लिखकर प्रासुक गर्म जल से धोकर रोगी को पिलाने से रोग दूर होता है। इस यंत्र को दीप माला पर्व पर केशर सुगंधी द्रव्यों से भोजपत्र पर या कागज पर लिखे १०८ बार तिजय पडुत स्तोत्र पढ़कर उसे सिद्ध करलें, पश्चात् हमेशा पास में रखें तो अपने परिवार में समाज में सबको प्रिय हो मान प्रतिष्ठा बढ़े या लक्ष्य की प्राप्त हो।[१] सुख शांति आनंद मंगल हो।

१. मंत्र व यंत्र साधना करते समय उनके सभी नियमों का पालन करने के साथ गुरु आज्ञा एवं उत्तर साधक मार्गदर्शन होना जरूरी है।

* * * * *

जैन दर्शन सम्मत मुक्त, मुक्ति, स्वरूप साधन

• *पं. देवकुमार जैन*

भारतीय दर्शनों का लक्ष्य - यद्यपि भारतीय दर्शन विचारप्रणालियों की भिन्नता के कारण अनेक नामात्मक हैं। जीव और जगत् के प्रति अपना-अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए भी उनका एक निश्चित उद्देश्य है कि जन्म-जरा मरण आधि व्याधि और उपाधि से सदा सर्वदा के लिये मुक्त होकर जीव को परम सुखसमाधि प्राप्त हो। इस परमसमाधि का अपर नाम मोक्ष है।

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के उपायों, साधनों का निरूपण करना भारतीय दर्शनों का केन्द्र बिन्दु है। महर्षि अरविन्द मोक्ष को भारतीय विचार-चिन्तन का एक महान् शद्व मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि भारतीय दर्शनों की कोई महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है तो वह मोक्ष का चिन्तन है। जो उनकी मौलिकता है और वह अन्य दर्शनों से उनके पृथक अस्तित्व का बोध कराता है।

भारतीय दर्शनों ने कहा है कि संसार में चार बातें ऐसी हैं, जिनको प्रांप्त करना पुरुष का कर्तव्य है। उनको पुरुषार्थ कहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,ये चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। इनमें मोक्ष या मुक्ति सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। संसार के समस्त प्राणी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, इन तीन प्रकार के दुःखों से सदा संत्रस्त रहते हैं। उनसे छुटकारा पाना ही पुरुष का अंतिम लक्ष्य है, साध्य है।

भारतीय दर्शनों की इस मुक्ति विषयक सामान्य भूमिका कर दिग्दर्शन कराने के पश्चात् अब विशेष स्पष्टीकरण के साथ भारत के मूल-दर्शन जैनदर्शन की मोक्ष सम्बन्धी धारणा को प्रस्तुत करते हैं।

जैनदर्शन में मोक्षवर्णन की सामान्य रूपरेखा - जैनदर्शन अध्यात्मवादी दर्शन है। उसकी प्रत्येक वृत्ति, प्रवृत्ति का परमलक्ष्य आत्यन्तिक सुख, परम समाधि प्राप्त करना है इस स्वीकृति के साथ उस सुख-समाधि को प्राप्त करने की सामान्य योग्यता का रूप क्या है? मूलतः आत्म-स्वरूप से परमशुद्ध होकर भी उससे दूर क्यों है? इसके कारण क्या हैं? उन कारणों से आत्मा किन-किन अवस्थाओं को प्राप्त करती है? ये अवस्थायें यदि औपाधिक हैं तो उपाधियों को दूर करने के कारण क्या हैं? उपाधियों के दूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते जाने के प्रसंग में आत्मा किन-किन भूमिकाओं को प्राप्त करती है? अंतिम भूमिका प्राप्त हो जाने के अनन्तर आत्मा की उपलब्धि का क्या रूप है? उस उपलब्धि में रमण करती आत्मा कहाँ और कब तक रहती है? आदि प्रश्नों का समाधान किया है।

अब इस समाधान के क्रम में सर्वप्रथम मोक्षप्राप्ति के अधिकारी की सामान्य योग्यता का निर्देश करते हैं।

मोक्षप्राप्ति के अधिकारी की सामान्य योग्यता - हमारा यह जगत अनन्त जीवों से भरा हुआ है। नर-नारक, सुर-असुर, पशु-पक्षी आदि उनकी भिन्न-भिन्न योनियां हैं, भिन्न-भिन्न आकृतियाँ हैं। परन्तु उन सभी की यह साहजिक वृत्ति है- बन्धन से मुक्ति। इसमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं है। उदाहरण के रूप में पिंजरे में पालित तोते और पिटारी में परावृत सर्प को देखें। उनको खान-पान आदि की सुविधायें सुलभ हैं, किन्तु अवसर मिलते ही पिंजरे व पिटारी के बंधन से मुक्त हो स्वतंत्र संचरण के लिये तत्पर रहते हैं। बंधन से मुक्ति की साहजिक वृत्ति होने पर भी यह तो सभी का अनुभव है कि उपलब्धि योग्यता पर आधारित है। योग्यता के अनुरूप सफलता मिलती है। अतः मोक्ष-विचार के संदर्भ में उसकी प्राप्ति का अधिकारी कौन है, कैसे बना जा सकता है और उसकी क्या योग्यता होनी चाहिये? समाधान के लिये सामान्य और न्यूनतम मानदंड यह होगा -

जो ममत्व, मान-बढ़ाई, वैर-विरोध, राग-द्वेष, कषाय-मद से मुक्त है, मौनी है, सम्यग्दृष्टि, सदाचारी है अल्पभोजी, अल्पभाषी, जितेन्द्रिय, अनासक्त है। आरंभ-परिग्रह का त्यागी है, हिंसा से सर्वथा निवृत्त है, दृढ़तापूर्वक संयम का पालन करने वाला है, निर्ग्रन्थ-प्रवचन का पालक, जीवन-मरण की आशा से निस्पृह है, हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञाता है, ज्ञान और क्रिया का समन्वित रूप में आचरण करने वाला है आदि तथा इसी प्रकार के अन्यान्य गुणों से युक्त एवं तदनुकूल आचार-विचार की वृत्ति वाला वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा, मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी है।

मोक्ष प्राप्ति के बाधक साधक कारण - मोक्षप्राप्ति के अधिकारी की सामान्य योग्यता को जान लेने के बाद अब मोक्ष के बाधक और साधक कारणों का निर्देश करते हैं।

लोक व्यवहार में जैसे प्रतिबंधक साधन, बेड़ी, कारावास आदि बंधन के कारण माने जाते हैं, वहीं स्थिति आध्यात्मिक क्षेत्र की जानना चाहिये कि कर्मों का आचरण आत्मा की मुक्ति में बाधक है।

यह कर्मावरण संसारी जीव के साथ अनादिकाल से जुड़ा हुआ है। इस जुड़ने के निमित्तों को जैन-दर्शन में आस्रव और बंधनाम से कहा है। आत्मा के मूल स्वरूप को प्रतिबिम्बित, प्रकाशित होने देना कर्म का कार्य है। द्रव्य और भाव उसके दो प्रकार हैं। द्रव्यकर्म पौद्गालिक वर्गणा रूप है और भावकर्म जीवन की राग-द्वेषादि वैभाविक परिणति रूप है। इन दोनों का ऐसा साहचर्य है कि जब तक आत्मा में राग-द्वेष आदि परिणति है, तब तक द्रव्यकर्म रूप प्रौद्गलिक वर्गणायें जीव से संबद्ध होती रहेंगे और कर्म रूप पौद्गलिक वर्गणाओं के सद्भाव रहते राग-द्वेष आदि भावकर्म का भी सद्भाव रहेगा। आत्मा के साथ कर्म-सम्बन्ध होने के मार्ग को आस्रव और बंध हो जाने को बंध कहते हैं।

आस्रव और बंध के कारण समान हैं। सामान्य से इन हेतुओं की संख्या पाँच है -मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इनमें भी कषाय और योग मुख्य हैं। इनका सद्भाव रहते कर्मों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्रव और बंध अवश्य होता रहेगा। इनमें भी कषाय मुख्य हैं। क्योंकि यह श्लेषण क्षमता के कारण कर्मपुद्गलों को आत्मा के साथ चिपकने और उनमें फलदान शक्ति उत्पन्न करने में सहकारी है। योग अपने परिस्पन्दन द्वारा कर्म पुद्गलों को आत्मा की ओर आकर्षित करता है। परन्तु इन दोनों से रहित आत्मा कर्मबंधन नहीं करती है।

आस्रव और बंध के कारण संसारी जीव को जो अनादि काल से कर्मबंधन होता आ रहा है, वह सांत है। उसका अन्त अवश्य होता है। इसकी स्वर्ण पाषाण व शुद्ध स्वर्ण की स्थिति से स्पष्ट समझा जा सकता है। स्वर्ण पाषाण में अनादिकाल से मिट्टी आदि का संयोग है। किन्तु अग्निताप आदि नियमित्तों के द्वारा शुद्ध स्वर्ण रूप को प्राप्त कर लेता है। इसी उदाहरण के प्रकाश में कर्मावरण को आत्मा से विलग होने की प्रक्रिया को समझें। कर्मबंधन की परंपरा का अन्त करने के लिये जैनदर्शन में द्विमुखी प्रक्रिया बतलाई है -एक तो कर्मागमन के मार्गों, स्रोतों को रोक देना और दूसरी संचित कर्मों को निःशेष करना। इन दोनों को क्रमशः संवर और निर्जरा कहा जाता है। संवर के द्वारा नवीन कर्मों का आगमन रुकता है और निर्जरा द्वारा पूर्व संचित कर्मों का क्षय किया जाता है। इस प्रकार संवर द्वारा नवागत कर्मों का निरोध और निर्जरा से संचित कर्मों का क्षय होता है और वैसा होने पर जीव मुक्त हो जाता है।

मोक्ष साधक कारणों की व्याख्या - मोक्ष के बाधक कारणों का तो कार्य निश्चित है कि कार्य में बाधा डालना, अतएव यहाँ साधक-कारणों का कुछ विशेष विचार करते हैं।

संवर आस्रव का प्रतिबंधक है। अर्थात् आस्रव का निरोध संवर कहलाता है। आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद कषाय और योग के प्रतिपक्षी संवर के कारण होंगे। परन्तु आस्रव का निरोध किया जाना कैसे संभव हो? उसको ध्यान में रखकर कहा है -१. गुप्ति २. समिति ३. धर्म (चिन्तन) ४. अनुप्रेक्षा (संसार, शरीर) आदि के स्वरूप का चिन्तन) ५. परिषह जप और ६. चारित्राराधना। इनके क्रमशः तीन, पांच , दस, बारह, बाईस और पाँच उत्तर भेद हैं। इन सब के नाम, लक्षण और कार्य की जानकारी के लिये शास्त्रों को देखिये। विस्तारभय से उनका वर्णन नहीं किया जा रहा है।

निर्जरा के हेतु भी वही हैं जो संवर के हैं। किन्तु इनके साथ तप का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिये। क्योंकि जैसे किसी गीली वस्तु को सुखाने के लिये तपाना पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ संश्लिष्ट कर्मों को विलग करने, उनका क्षय करने के लिये तप साधना आवश्यक है। बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से तप के मूल दो प्रकार है और इन दोनों के भी क्रमशः छह-छह भेद हैं। जो क्रमशः इस प्रकार है -

बाह्य तपः - १. अनशन (आहार का त्याग) २. उनोदर (भूख से कम खाना) ३. वृत्तिसंक्षेप (विवध वस्तुओं के गृद्धिभाव को कम करना) ४. रसपरित्याग (दूध, घी आदि मदकारी पदार्थों का त्याग) ५. कायक्लेश (सर्दी, गर्मी, तथा विविध आसनों द्वारा शरीर को संयमित करना) ६. संलीनता (अंगोपांगों का संकोच कर रहना, एकान्त स्थान में संयमभाव से रहना)।

आभ्यन्तरतपः - १. प्रायश्चित (दोषशोधन) २. विनय (नम्रता) ३. वैयावृत्त (सेवा) ४. स्वाध्याय (अध्ययन) ५. ध्यान ६. व्युत्सर्ग (शरीर आदि से ममत्व त्याग, कषायों को क्रश करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह दोनों प्रकार के तप परस्पर सापेक्ष होते हुए भी आभ्यान्तर तप मुख्य हैं। इनसे विशेष कर्मक्षय होता है।

संवर-निर्जरा का फलितः मोक्ष का लक्षण - कारण के सद्भाव में कार्य अवश्य होता है। संवर और निर्जरा कर्मक्षय के कारण है। बंधन के विघातक है। अतएव इनके द्वारा समग्र रूपेण कर्म क्षय होने से आत्मा की जो स्थिति बनती है, वही मोक्ष है। मोक्ष अर्थात् आत्मा की सर्वांगीण पूर्णता, पूर्ण कृतकृत्यता एवं परमपुरुषार्थ की सिध्दि। इस स्थिति के प्राप्त होने पर आत्मा कर्मकलंक, शरीर आदि से सर्वथा विलग होकर अनन्त स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों और अव्याबाध सुखरूप विलक्षण अवस्था में रूपान्तरित हो जाती है। मोक्ष जीव की वह अवस्था है, जब सब बंधनों का अभाव हो जाता है। दैहिक, वाचिक, मानसिक सब दोष निःशेष हो जाते हैं। सभी प्रकार की उपाधियों से विमुक्त स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है।

यद्यपि मोक्ष का कोई भेद नहीं है, किन्तु अपेक्षा भेद से आत्मा को क्षायिक ज्ञान, दर्शन और यथाख्यातचारित्र रूप स्थिति प्राप्त हो जाने को भावमोक्ष और कर्मजन्य उपाधियों एवं कर्मों के सर्वथाक्षय होने को द्रव्यमोक्ष का कहा जाता है। अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार धाति कर्मों का क्षय भावमोक्ष है और वेदनीय, आयु, नाम गोत्र, इन चार अघाति कर्मों का क्षय द्रव्यमोक्ष है। इन दोनों में से प्रथम को जीवन मुक्त और द्वितीय को विदेहमुक्त भी कहा जा सकता है।

मुक्तात्मा के मौलिक गुण -

कर्ममुक्त आत्मा के मौलिक गुणों का यथाप्रसंग पूर्व में कुछ उल्लेख किया है, अतः पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं रह जाती है। किन्तु दर्शनान्तरों ने मुक्तात्मा को निर्गुण माना है। उनके मत से मुक्ति प्राप्त आत्मा की स्थिति अपने अविनाभावी असाधारण गुणों से विहीन है। दूसरे शब्दों में कहें तो जड़ पदार्थों की तरह स्थिति हो जाती है। किन्तु इस भ्रान्त धारण का निराकरण करने के लये जैन दर्शन का मंतव्य है कि जब यह माना जाता है कि इहलोक स्थित आत्मा उपयोग ज्ञानदर्शन आदिगुण युक्त है तब मुक्तावस्था में भी उन्हीं गुणों से संपन्न रहती है, यह स्वतः सिद्ध है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि कर्मावृत्त ऐहिक शरीरधारी आत्मा में वे गुण पूर्ण रूपेण स्पष्ट नहीं थे किन्तु मुक्तात्मा पूर्णतया उन गुणोंयुक्त रहती है। संक्षेप में उन गुणों के नाम इस प्रकार है -१. अनन्तज्ञान २. अनन्तदर्शन ३. अव्यावाधसुख ४. क्षायिकसम्यकत्व ५. अक्षयस्थिति ६. अमूर्तत्व ७. अगुरुलघुत्व ८. अनन्त वीर्य (शक्ति) इनके अतिरिक्त अन्य भी अनन्त गुण हैं। किन्तु यहाँ संकेत मात्र के लिये इन गुणों का उल्लेख इसलिये किया है कि मुक्तात्मा अपने मौलिक गुणों युक्त सदैव रहती है। कालान्तर में भी किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं पाई जाती है।

मुक्तात्मा का अवस्थान - अब यह प्रश्न है कि अन्य द्रव्यों की तरह जीव का भी अवस्थान यह लोक है तो क्या कर्मावरण से मुक्त आत्मा का अवस्थान यह दृश्यमान जगत है या अन्य कोई क्षेत्र, कर्मयुक्त आत्मा कहाँ रहती है? इसका उत्तर है कि मुक्तात्मा स्थूल (औरादिक) और सूक्ष्म (तेजस्वकार्मण) शरीर को सदा के लिये छोड़कर अशरीरी होकर अविग्रह (सीधी रेखा जैसी) गति से ऊर्ध्व गमन कर लोक के अग्रभाग में स्थित मुक्ति क्षेत्र (सिद्धशिला) में स्थित हो जाती है। इस गति में केवल एक समय लगता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकाग्रभाग तक मुक्त जीव की गति होने का कारण वहीं तक धर्मास्तिकाय का सद्भाव पाया जाता है, जो जीव और पुद्गलों की गति में सहकारी द्रव्य है। कोई अवरोधक कारण नहीं होने से अविग्रह गति होती है और ऊर्ध्वगमन करना आत्मा का स्वभाव है। जो निम्नांकित चार कारणों और उनके उदाहरणों से समझ में आ जाता है -

१. **पूर्वप्रयोग** - कुंभकार द्वारा दंड हटा लेने पर भी घुमाया गया चक्र घूमता रहता है। वैसे ही बद्ध कर्मों से मुक्त होने पर उत्पन्न वेग के कारण मुक्तात्मा ऊर्ध्व गति करती है।

२. **संग का अभाव** - मिट्टी से लपेटी तूंबड़ी पानी में डाली जाने पर धीरे धीरे लेप के हटते जाने के बाद पानी की सतह पर आ जाती है, वैसे ही कर्म लेप से मुक्त आत्मा भी लोक के ऊर्ध्वतम भाग में स्थित होती है।

३. **बंध छेद** - एरंड बीज कोष से मुक्त होने पर छिटक कर ऊपर उछलता है, वैसे ही कर्मबंधन का उच्छेद होने पर आत्मा ऊर्ध्व गति करती है।

४. **गतिपरिणाम** - आत्मा स्वभावतः ऊर्ध्वगति करने वाली है। अतः निर्वात अग्नि की लो के ऊपर की ओर उठने की तरह मूक्तात्मा ऊर्ध्वगति करती है।

इस प्रकार मुक्तात्मा के लोकाग्रपर्यन्त अविग्रह ऊर्ध्वगति करने के कारणों को जानना चाहिये।

मुक्तात्मा का परिचय - जो स्थूल मूर्त रूपी है, उसका परिचय तो किसी आकार-प्रकार द्वारा दिया भी जा सकता है। किन्तु मुक्तात्मा की तो ऐसी स्थिति नहीं है, वह अमूर्त अरूपी है। इसलिये उसका वाणी, तर्क, बुद्धि, उपमा आदि के द्वारा भी परिचय दिया जाना संभव नहीं है। निषेधपरक शब्दों द्वारा कुछ परिचय दिया जा सकता है। जैसे वह न तो ह्रस्व है, न दीर्घ उसका न कोई वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है। न वह स्त्री, पुरुष-नपुसंक है आदि। वैदिक परंपरा में मुक्तात्मा के परिचय के लिये नेति-नेति शब्द प्रयुक्त हुआ है।

मुक्तात्मा की अवगाहन - मोक्षगामी आत्मा के वर्तमान भव में जितनी ऊंचाई वाले समस्त शरीर में आत्मप्रदेश व्याप्त रहते हैं उस ऊँचाई में से तृतीय भागन्यून करने पर जितनी ऊँचाई रहे, उतनी ऊँचाई में मुक्तात्मा के आत्मप्रदेश मुक्ति क्षेत्र में व्याप्त रहते हैं। शास्त्रों में मोक्षगामी आत्मा के वर्तमान शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई पाँच सो धनुष, मध्यम ऊँचाई सात हाथ और जघन्य दो हाथ प्रमाण बताई गई है। इनमें से तृतीयांश कम करके शेष उत्कृष्ट मध्यम, जघन्य अवगाहना जानना चाहिये और उस अवगाहना से वह अनन्त काल तक वहाँ अवस्थित रहती है।

मुक्त जीवों की तरह संसारी जीव भी अनन्त हैं - कतिपय तर्क करते हैं कि अगाध जल से भरा कुआ भी पानी निकालते निकालते खाली हो जाता है, वैसे ही मुक्ति क्षेत्र में अनन्तकाल से अनन्त आत्मायें अब स्थित हैं, हो रही हैं और होंगी, तब वह समय भी आ सकता है, जब संसार खाली हो जाये, एक भी जीव संसार में न रहे। उस तर्क का समाधान यह है -

काल अनन्त है। अतीत, वर्तमान और अनागत के रूप में उसके भेद मान लेने पर भी काल की अनन्तता में कोई अन्तर नहीं आता है। इसी प्रकार आत्मायें भी अनन्त हैं। जब अनन्त अतीत में भी यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार संसारी आत्माओं से रिक्त नहीं हुआ तो अनन्त अनागत में भी यह कैसे रिक्त होगा? क्योंकि जिस प्रकार अनागत का एक समय वर्तमान बनकर अतीत बन जाता है, किन्तु अनागत जैसा का तैसा अनन्त बना रहता है, उसकी अनन्तता कभी समाप्त नहीं होती। इसी प्रकार आत्माओं की अनन्तता में अन्तर नहीं आता है। अनन्त की यही तो अन्तता है कि कितनी भी वृद्धि हानि हो, लेकिन अपनी इयत्ता का अतिक्रमण नहीं करता है। अतएव अनन्त आत्माओं को मुक्ति प्राप्त कर लेने पर भी संसारी आत्माओं की अनन्तता में न तो किसी प्रकार का अन्तर आने वाला है और न संसारी आत्माओं से संसार रिक्त होने वाला है।

मुक्तात्माओं का पुनरागमन नहीं - मुक्तात्माओं का मुक्ति से प्रत्यावर्तन होकर पुनः संसार में न आने का कारण यह है कि जिस प्रकार शुद्ध स्वर्ण पुनः कीटकालिमा से संयुक्त नहीं होता है, उसी प्रकर कर्मकलंक से सर्वथा मुक्त मुक्तात्मा कर्मसंयोग की प्राप्त नहीं करती है। दूसरी बात यह है कि बीज के जल जाने पर अंकुरोत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही संसार के कारणभूत कर्मबीज के जल जाने पर भवांकुर भी उत्पन्न नहीं होता है। इसी कारण मुक्तात्माओं का संसार में प्रत्यावर्तन नहीं होता है।

मुक्तात्माओं संबंधी अनेक बिन्दुओं का संकेत करना अभी शेष है। विस्तारभय से वर्णन किया जाना संभव नहीं हो सका है। इस विहंगावलोकन से पाठकों को पर्याप्त बोध हो सकेगा यह हमारा मत है।

अब मुक्तिक्षेत्र सम्बन्धी वक्तव्य प्रारम्भ करते हैं।

मुक्ति क्षेत्र का स्वरूप व नाम - मुक्तक्षेत्र लोक के ऊपरी अग्रभाग में स्थित है। जैनदर्शन के अनुसार मध्य लोकवर्ती ढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र से मुक्ति प्राप्त होती है। जिसकी लंबाई-चौड़ाई पैतांलीस लाख योजन प्रमाण है। इतना ही क्षेत्र मुक्ति क्षेत्र का है। मुक्त क्षेत्र की मौटाई प्रारंभ में आठ योजन की है। और ऊपर-ऊपर क्रमशः पतली, होती हुई अंतिमभाग में मक्खी के एक पंख से भी अधिक पतली मोटाई रह जाती है। यह शंख, स्फटिकमणि और कुन्दपुष्य के समान श्वेत, निर्मल और शुद्ध है यह उत्तान (ऊपर की ओर मुख किये हुए) छत्र के समान आकार वाला है तथा सवार्थ सिद्ध विमान से बारह योजना ऊपर है तथा मुक्ति क्षेत्र से एक योजन ऊपर लोकान्त है। यह क्षेत्र धनोदधि, धनबात और तनुबात इन तीन बातवलयों से परिवेष्टित है। अतीत, अनागत और वर्तमान काल में मुक्त हुई, होंगी और हो रही आत्मायें स्वरूप से इसी मुक्ति क्षेत्र में स्थित होती है।

मुक्ति क्षेत्र के आगमों में बारह सार्थक नाम इस प्रकार बतायें हैं -

१. ईषत् - रत्नप्रभा आदि अन्य नारक पृथ्वियों की अपेक्षा यह पृथ्वी छोटी होने से ईषत् कहलाती है।

२. ईषत् प्राग्भार - रत्न प्रभा आदि अन्य पृथ्वियों की अपेक्षा इसकी ऊँचाई (प्राग्भार) अल्प है। अतः इसको ईषत्प्राग्भारा कहते हैं।

३. तन्वी - अन्य पृथ्वियों से यह पृथ्वी तनु होने से तन्वी कहलाती है।

४. तनुतन्वी - विश्व में जितने तनु (पतले) पदार्थ है, उन सबकी अपेक्षा यह पृथ्वी ऊपरी भाग में पतली है।

५. सिद्धि - इस क्षेत्र में पहुंचकर मुक्तात्मा स्वस्वरूप की सिद्धि कर लेती है, जिससे यह भी सिद्धि कहलाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. **सिद्धालय** - मुक्त आत्मायें सिद्ध कहलाती है, क्योंकि उन्होंने कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त होकर परमपुरुषार्थ मोक्ष सिद्ध कर लिया है और इसको सिद्ध करने के अनन्तर यह क्षेत्र उनका आलय (वासस्थान) बनता है। इसीलिये इसका नाम सिद्धालय है।

७. **मुक्ति** - जिन आत्माओं ने कर्मबंधन से सर्वथा मुक्ति प्राप्त करली है, उन आत्माओं का ही इस क्षेत्र में आगमन होता है, इसलिये यह क्षेत्र भी मुक्ति कहलाता है।

८. **मुक्तालय** - मुक्त आत्माओं का आलय होने से यह क्षेत्र मुक्तालय कहलाता है।

९. **लोकाग्र** - लोक के अग्र भाग में स्थित होने से यह क्षेत्र भी लोकाग्र कहलाता है।

१०. **लोकाग्रस्तूपिका** - यह क्षेत्र लोक की स्तूपिका (शिखर) के समान होने इसका लोकाग्रस्तूपिता यह सार्थक नाम है।

११. **लोकाग्रप्रतिवाहिनी** - लोक के अग्रभाग के द्वारा वाहित किये जाने से यह भी मुक्तिक्षेत्र का नाम है।

१२. **सर्वजीव-प्राण-भूत जीव सत्वसुखावहा चतुर्गति** - के जीव कर्मक्षय करके इस क्षेत्र को प्राप्त करते हैं, और वे वहाँ शाश्वत सुख की प्राप्ति करते हैं।

इस प्रकार से मुक्ति क्षेत्र का संक्षिप्त संकेत करने के बाद अब मोक्ष मार्ग (मुक्ति प्राप्त करने के साधनों) का विचार करते हैं। जिनका अवलंबन लेकर आत्मा अपने लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करती है।

मुक्ति मार्ग - जिस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में रोग, रोग हेतु, आरोग्य और औषधि, इस चार बातों का जानना आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिक विकास की साधना पद्धति में भी १. संसार २. संसारहेतु ३. मोक्ष और ४. मोक्षोपाय, इन चार का ज्ञान होना अवश्य है।

संक्षेप में संसार और संसार के कारकों का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। प्रकृत में उनका पुनः उल्लेख करना उपयोगी नहीं है। अतः मुक्ति के साधनों का कुछ विस्तार से वर्णन करते हैं।

कर्मक्षय होने पर मुक्ति प्राप्त होती है और कर्मक्षय के साधन के रूप में संवर और निर्जरा का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। परन्तु वे कब कार्यकारी होते हैं? उनके मुख्य कारणों को यहाँ मुक्तिमार्ग के रूप में समझना चाहिये।

जैन शास्त्रों में मुक्तिमार्ग का विचार दो विवक्षाओं से किया है -१. निश्चय २. व्यवहार। निश्चित से मुक्ति मार्ग एक है -क्षायिक भाव ज्ञानदर्शन आदि शुद्ध आत्मिक भावों की प्राप्ति। व्यवहार विवक्षा से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की समवेत साधना ही मुक्ति प्राप्ति का एक-मात्र मार्ग, उपाय है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये आचार्य उमास्वाति ने कहा है सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि मोक्षमार्गः। इनके साथ तप का भी साधन के रूप में निर्देश किया है। जो सम्यक्चारित्र का ही एक अंग है। अतः इसका पृथक निर्देश नहीं किया है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ सम्यक् विशेषण का साभिप्रायः प्रयोग किया है। यह जैनदर्शन को विशेषता का द्योतक है। मुक्ति का मार्ग केवल दर्शन, ज्ञान, चारित्र सामान्य नहीं, अपितु इनको सम्यक् होना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। क्योंकि मिथ्या होने पर ये संसार के कारण होंगे। जिसकी दृष्टि सम्यक्आत्मस्वरूप चिन्तन परक है, वह सम्यग्दृष्टि है और उसके दर्शन, ज्ञान, चरित्र ही सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यकचरित्र कहलाते हैं।

सम्यग्नदर्शन आदि तीनों के लक्षण इस प्रकार हैं :-

सम्यग्दर्शन - अपने-अपने स्वभाव में स्थित तत्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा मिथ्यात्वोदय जनित विपरीत अभिनिवेश से रहित पंचास्किय, षड्द्रव्य, जीवादि सात तत्व एवं जीवादि नौ पदार्थों का थ्था तथ्य श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अथवा दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम उपशम रूप अंतरंग कारण से जो तत्वार्थ श्रद्धान होता है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस अंतरंग कारण की पूर्णता कहीं निसर्ग (स्वभाव) से होती है और कहीं अधिगम (परोपदेशादि) से होती है।

सम्यग्दर्शन सामान्यापेक्षा एक है। निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का है। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक के भेद से तीन प्रकार का है। शब्दों की अपेक्षा संख्यात, श्रद्धान करने वालों की अपेक्षा असंख्यात और श्रद्धान करने योग्य पदार्थों एवं अध्यसयों की अपेक्षा अनन्त प्रकार का है।

सम्यग्ज्ञान - प्रमाण और नयों के द्वारा जीवादि सात तत्वों के संशयविपर्यय और अनध्यवसाय से रहित यथार्थ ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनपर्याय, केवल ये सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं। उत्पत्ति में मन और इन्द्रियों की सहायता अपेक्षित होने से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष एवं पर निरपेक्ष आत्मा से उत्पन्न होने के कारण अवधि, मनपर्याय और केवल ये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाते हैं। मति, श्रुत और अवधि, ये तीन ज्ञान सम्यक् भी और मिथ्या भी होते हैं, शेष दो सम्यक् ही होते हैं। क्योंकि दोनों मिथ्यात्व के कारणभूत मोहनीयकर्म का अभाव होने से विशुद्ध आत्मा को ही संभव है। मति और श्रुत ये दो ज्ञान सभी संसारी (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि) जीवों के पाये जाते हैं। अवधिज्ञान भव प्रत्यिक और गुण (क्षयोपशम) प्रत्ययिक होने से दो प्रकार का है। भवप्रत्ययिक देव और नारकों एवं चरमशरीरी तीर्थंकरों में और दूसरा गुण प्रत्यायिक, मनुष्यतियंचों में संभव है। मनपर्याय व केवल ज्ञान सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के ही होतेहैं। मिथ्यादृर्यटि के अति, श्रुत और अवधिज्ञान मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान एवं विभंगज्ञान कहलाते हैं।

सम्यक्चारित्र - अशुभ से निवृत्ति और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होना सम्यक् चारित्र है। अथवा संसार के कारणभूत रागद्वेषादि की निवृत्ति के लिए ज्ञानवान पुरुष का शरीर और वचन की बाह्य क्रियाओं से तथा आभ्यान्तर मानसिक क्रियाओं से विरत होना सम्यक्चारित्र कहलाता है। यह सम्यग्ज्ञान पूर्वक होता है और सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन पूर्वक। अतएव सम्यकत्व के बिना सम्यक् चारित्र नहीं होता है, यह सिद्ध हुआ। ारित्र में सम्यक् विशेषण अज्ञानपूर्वक आचरण की निवृत्ति के लिये है।

सामान्यतः चारित्र एक प्रकार का है। अर्थात् चारित्रमोह के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से होने वाली आत्मविशुद्धि की दृष्टि से चारित्र एक है। बाह्य आभ्यान्तर निवृत्ति अथवा निश्चय व्यवहार या प्राणीसंयम इन्द्रियसंयम की अपेक्षा दो प्रकार का है। औपशमिक, क्षायिक क्षायोपशामिक अथवा उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य विशुद्धि के भेद से तीन प्रकार का है। छद्मस्थों का सराग और वीतराग तथा सर्वज्ञों का संयोग और अयोग इस तरह चार प्रकार का है। सामायिक छेदोपस्थापना परिहार विशुद्धि सूक्ष्म रूपराय और यथाख्यात के भेद से पाँच प्रकार का है। इसी प्रकार विविध निवृत्ति रूप परिणामों की दृष्टि से संख्यात, असंख्यात और अनन्त विकल्प रूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधनों का साहचर्य नियम - उक्त तीनों साधनों में से सम्यदर्शन और सम्यग्ज्ञान में साहचर्य सम्बन्ध है। जैसे मेघपटल के दूर हो जाने पर सूर्य के प्रताप व प्रकाश एक साथ प्रगट हो जाते हैं, उसी प्रकार जिस समय दर्शन मोह के उपशम या क्षयोपशम से मिथ्यादर्शन की निवृत्ति होने से सम्यग्दर्शन प्रादुर्भूत होता है, उसी समय मिथ्याज्ञान की भी निवृत्ति हो कर सम्यग्ज्ञान का भी आविर्भाव हो जाता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का साहचर्य नियमतः निश्चित है। किन्तु सम्यक्चारित्र की अनियत स्थिति है। अर्थात् किसी में सम्यग्दर्शन-ज्ञानं के साथ ही चारित्र हो भी सकता है और किसी को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के प्रगढ़ होने के कुछ समय बाद सम्यक्चारित्र हो।

साधनों की पूर्णता व एकता आवश्यक - उपर्युक्त कथन से यह ज्ञात हो गया है कि मुक्ति साधनों का साहचर्य नियम क्या है, लेकिन पूर्णता क्रम से होती है। सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन, तदनन्तर सम्यग्ज्ञान और अन्त में सम्यक्चारित्र पूर्ण होता है। इनमें से एक भी साधन न हो, एक की भी अपूर्णता हो तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। तेरहवें गुणस्थान के प्रारंभ में यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्ण हो जाते हैं फिर भी सम्यक्चारित्र की पूर्णता न होने से मुक्ति नहीं होती है। चारित्र की पूर्णता अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान में होती है। चारित्र मोहनीय का अभाव हो जाने से क्षीण मोह नामक बारहवें गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र है, जो चारित्र की पूर्णता का सूचक है, तथापि चारित्र की पूर्णता के लिये योग और कषाय का अभाव भी अपेक्षित है। बारहवें गुणस्थान में कषाय का अभाव हो गया है, लेकिन योग का सद्भाव है जो तेरहवें गुणस्थान के अन्त तक बना रहता है। इसीलिये तेहरवें गुणस्थान में भी चारित्र अपूर्ण माना गया है।

यहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि औपशमिक क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि को प्राप्त करने के बाद ही तत्काल मुक्ति प्राप्त नहीं हो जाती है। क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि से संपन्न आत्मा उत्क्रांति करती हुई विभिन्न श्रेणियों स्थानों को प्राप्त कर अयोगिकेवली ही मुक्त होती है औपशमिक सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त आत्मा एक निश्चित तथा उपशान्ति मोह गुणस्थान तक उत्क्रांति कर पतन करती है और अपने संसार के कारण भूत मिथ्यात्व गुणस्थान पर आ पहुंचती है।

सम्यग्दर्शन आदि तीनों में लाक्षणिक भिन्नता होने से पार्थक्य है, जिससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि पृथक-पृथक तीन मोक्ष के मार्ग है। किन्तु इन तीनों का एकत्व होने पर ही आत्मा निःशेष रूप से द्रव्य और भावकर्मों से सर्वथा रहित हो मुक्त होती है।

मुक्ति प्राप्ति के लिये सम्यग्दर्शन आदि तीनों के एकत्व की आवश्यकता क्यों है? इसके लिये हम रोगोपचार की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करें। जिस प्रकार निरोग होने के लिये औषधि पर श्रद्धान, ज्ञान और चिकित्सक द्वारा बताये गये आचार के अनुसार प्रवृत्ति की जाती है, तीनों में से एक के बिना रोग दूर नहीं हो सकता है, उसी प्रकार भवरोगी के लिये संसार रोग से मुक्त होने के लिये सम्यग्दर्शन, या ज्ञान या चारित्र से मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। तीनों की एकता अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रसिद्ध है -

हतं ज्ञानं क्रिया हीनं हत्य चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलांधको दग्धः पश्यन्नपिच पंगुलः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोगमेवेह वदन्तितज्ज्ञा, लह्येक चक्रेण रथः प्रयाति।

अन्धश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ, सौ संप्रभुक्तौ नगरं प्रविष्टौ॥

मनोविज्ञान की दृष्टि से भी विचार करें तो ज्ञात होगा कि सम्यग्दर्शन आदि तीनों में तीन मानसिक शक्तियों का समायोजन किया गया है ज्ञान, इच्छा प्रयत्न (क्रिया)। इनमें ज्ञान सम्यग्ज्ञान रूप है, इच्छा सम्यग्दर्शन रूप और प्रयत्न सम्यक्चारित्र रूप है। इन तीनों घटकों का एकत्व और तालमेल जैसे लोक व्यवहार में सफलता प्राप्त कराता है, वही स्थिति मुक्ति प्राप्ति के लिये भी समझना चाहिये कि सम्यग्दर्शन आदि तीनों की पूर्ण एकता आवश्यक है। केवल पृथक-पृथक ज्ञानादि से मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। ऊपर के दृष्टान्त में भी यही स्पष्ट किया गया है।

मुक्ति अभावात्मक नहीं है सम्यदर्शन आदि तीनों साधनों की पूर्णता और एकता होने पर मुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु वह हमारे लिए प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष है। इसलिये कतिपय व्यक्ति मुक्ति की सत्ता में शंका करते हैं। इसका आशय यह हुआ कि किसी ने अपने परदादा को नहीं देखा और कहे कि मेरे परदादा नहीं थे तो कौन उसकी बात पर विश्वास करेगा? मोक्ष के अस्तित्व के विषय में शंका करने वाली इसी प्रकार के माने जायेंगे। शास्त्रीय प्रमाणों से मोक्ष के अस्तित्व की सिद्धि इस प्रकार है -

जैसे भविष्य में होने वाले चन्द्र-सूर्य ग्रहण आदि का ठीक-ठीक ज्ञान ज्योतिशास्त्र से हो जाता है कि अमुक दिन, अंश, क्षेत्र में ग्रहण होगा। इसी प्रकार सर्वज्ञ प्रतिपादित आगम से मुक्ति के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

अनुमान प्रमाण से भी मुक्ति का अस्तित्व सिद्ध होता हैं। जैसे धुरे के घूमने घटीयंत्र घूमता है। यदि बैलों का घूमना रूक जाये तो धुरे का और धुरे के रूकने पर घटीयंत्र का घूमना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार कर्मोदय रूपी बैलों के चलने पर ही चातुर्गतिक रूप संसार धुरे का चक्र घूमता है और चतुर्गति रूपी धुरा ही अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक आदि वेदना रूपी घटीयंत्र को घुमाता रहता है। कर्मोदय की निवृत्ति हो जाने पर चतुर्गति का चक्र रूक जाता है और उसके रूक जाने पर संसार रूपी घटी यंत्र का चलना भी बंद हो जाता है। क्योंकि कारण के अभाव में कार्य नहीं होता है संसार रूपी घटीयंत्र के रूकने का नाम ही मुक्ति है। सारांश यह कि समस्त दुःखों और दुःख के हेतुभूत कर्मों का विनाश हो जाने पर आत्मा की जो स्थिति बनती है, वह मोक्ष है। अतः उसको अभाव रूप नहीं माना जा सकता है। फिर भी कपोल कल्पनाओं से घिरे हुए शंकाग्रस्त रहें तो भले रहें।

यद्यपि अन्यान्य दर्शनों में भी मुक्ति का विचार किया गया है। किन्तु प्रकृत में शीर्षक के अनुसार जैनदर्शन के मुक्ति विषयक विचारों को प्रस्तुत किया है।

* * * * *

खजांची मोहल्ला

बीकानेर ३३४००१ राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org